पाठ - 20

FT1EAX

स्वामी विवेकानन्द

"यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि वह दूसरे धर्मों का विनाश कर अपने धर्म की विजय कर लेगा, तो बन्धुओं ! उसकी यह आशा कभी भी पूरी नहीं होने वाली। सभी धर्म हमारे अपने हैं, इस भाव से उन्हें अपनाकर ही हम अपना और सम्पूर्ण मानवजाति का विकास कर पायेंगे। यदि भविष्य में कोई ऐसा धर्म उत्पन्न हुआ जिसे सम्पूर्ण विश्व का धर्म कहा जाएगा तो वे अनन्त और निर्बाध होगा। वह
धर्म न तो हिन्दू होगा, न मुसलमान, न बौद्ध, न ईसाई अपितु वह इन सबके मिलन और सामंजस्य से पैदा होगा।"

ये ही वो शब्द हैं, जिन्होंने विश्वमंच पर भारत की सिरमौर छवि को प्रस्तुत किया और संसार को यह मानने को विवश कर दिया कि भारत वास्तव में विश्वगुरु है। क्या आप जानते हैं, ये शब्द किसने कहे थे ? ये शब्द 11 सितम्बर सन् 1893 को शिकागो (अमेरिका) में आयोजित विश्वधर्मसभा के मंच पर स्वामी विवेकानन्द ने कहे थे ।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी को कोलकाता में हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र था।

घर का वातावरण अत्यन्त धार्मिक था। दोपहर में सारे परिवार की स्त्रियाँ इकट्ठा होतीं और कथा-वार्ता कहतीं। नरेन्द्र शांत होकर बड़े चाव से इन कथाओं को सुनता। बचपन में ही नरेन्द्र ने रामायण तथा महाभारत के अनेक प्रसंग तथा भजन कीर्तन कण्ठस्थ कर लिये थे।

नरेन्द्र की प्राथमिक शिक्षा घर पर ही हुई। इसके उपरान्त वे विभिन्न स्थानों पर शिक्षा प्राप्त करने गए। कुश्ती, बॉक्सिंग, दौड़, घुड़दौड़, तैराकी, व्यायाम उनके शौक थे। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। सुन्दर व आकर्षक व्यक्तित्व के कारण लोग उन्हें मन्त्र-मुग्ध होकर देखते रह जाते। घर पर पिता की विचारशील पुरुषों से चर्चा होती। नरेन्द्र उस चर्चा में भाग लेते और अपने विचारों से विद्वत्मण्डली को आश्चर्य चकित कर देते। उन्होंने बी0ए0 तक शिक्षा प्राप्त की। इस समय तक उन्होंने पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का विस्तृत अध्ययन कर लिया था। दार्शनिक विचारों के अध्ययन से उनके मन में सत्य को जानने की इच्छा जागने लगी।

कुछ समय पश्चात् नरेन्द्र ने अनुभव किया कि उन्हें बिना योग्य गुरु के सही मार्गदर्शन नहीं मिल सकता है क्योंकि जहाँ एक ओर उनमें आध्यात्मिकता के प्रति जन्मजात रुझान था वहीं उतना ही प्रखर बुद्धियुक्त तार्किक स्वभाव था। ऐसी परिस्थिति में वे ब्रह्म समाज की ओर आकर्षित हुए। नरेन्द्र नाथ का प्रश्न था - ''क्या ईश्वर का अस्तित्व है ?'' इस प्रश्न के समाधान के लिए वे अनेक व्यक्तियों से मिले किन्तु समाधान न पा सके। इसी बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि कोलकाता के समीप दक्षिणेश्वर में एक तेजस्वी साधु निवास करते हैं।

अपने चचेरे भाई से भी नरेन्द्र ने इन साधु के बारे में सुना। वे मिलने चल दिए। वे साधु थे स्वामी रामकृष्ण परमहंस। नरेन्द्र ने उनसे पूछा - ''महानुभाव, क्या आपने ईश्वर को देखा है ?'' उत्तर मिला ''हाँ मैंने देखा है, ठीक ऐसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ ,बल्कि तुमसे भी अधिक स्पष्ट और प्रगाढ़ रूप में।'' नरेन्द्र इस उत्तर पर मौन रह गये। उन्होंने मन ही मन सोचा - चलो कोई तो ऐसा मिला जो अपनी अनुभूति के आधार पर यह कह सकता है कि ईश्वर का अस्तित्व है। नरेन्द्र नाथ का संशय दूर हो गया। शिष्य की आध्यात्मिक शिक्षा का श्री गणेश यहीं से हुआ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने इस उद्विग्न, चंचल और हठी युवक में भावी युगप्रवर्तक और अपने सन्देशवाहक को पहचान लिया था। उन्हांेने टिप्पणी की -

''नरेन (नरेन्द्र) एक दिन संसार को आमूल झकझोर डालेगा।''

गुरु रामकृष्ण ने अपने असीम धैर्य द्वारा इस नवयुवक भक्त की क्रान्तिकारी भावना का शमन कर दिया। उनके प्यार ने नरेन्द्र को जीत लिया और नरेन्द्र ने भी गुरु को उसी प्रकार भरपूर प्यार और श्रद्धा दी।

अपनी महासमाधि से तीन-चार दिन पूर्व श्री रामकृष्ण परमहंस ने अपनी सारी शक्तियाँ नरेन्द्र को दे डालीं और कहा -

''मेरी इस शक्ति से, जो तुममें संचारित कर दी है, तुम्हारे द्वारा बड़े-बड़े कार्य होंगे और उसके बाद तुम वहाँ चले जाओगे जहाँ से आये हो''

रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् नरेन्द्र परिव्राजक के वेश में मठ छोड़कर निकल पड़े। उन्होंने सम्पूर्ण भारत में घूम-घूम कर रामकृष्ण के विचारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। वे

भारतीय जनता से मिलते। उनके सुख दुःख बाँटते। दलितांे शोषितों के प्रति उनके मन में विशेष करुणा का भाव था। यह समाचार पढ़कर कि कोलकाता में एक आदमी भूख से मर गया, द्रवित स्वर में वे पुकार उठे ''मेरा देश, मेरा देश! छाती पीटते हुए उन्होंने स्वयं से प्रश्न किया - ''धर्मात्मा कहे जाने वाले हम संन्यासियों ने जनता के लिए क्या किया है ?'' इसी समय उन्होंने अपना पहला कर्तव्य तय किया - ''दरिद्रजन की सेवा, उनका उद्धार'' उनके द्रवित कण्ठ से यह स्वर फूटा '' यदि दरिद्र पीड़ित मनुष्य की सेवा के लिए मुझे बार-बार जन्म लेकर हजारों यातनाएँ भी भोगनी पड़ीं, तो मैं भोगँूगा।''

स्वामी जी ने अपने जीवन के कुछ उद्देश्य निर्धारित किये। सबसे बड़ा कार्य धर्म की पुनसर््थापना का था। उस समय भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में बुद्धिवादियों की धर्म से श्रद्धा उठती जा रही थी। अतः आवश्यक था धर्म की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करना जो मानव जीवन को सुखमय बना सके। दूसरा कार्य था हिन्दू धर्म और संस्कृति पर हिन्दुओं की श्रद्धा जमाए रखना जो उस समय यूरोप के प्रभाव में आते जा रहे थे। तीसरा कार्य था भारतीयों को उनकी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं का योग्य उत्तराद्विकारी बनाना। स्वामी जी की वाणी और विचारों से भारतीयों में यह विश्वास जाग्रत हुआ कि उन्हें किसी के सामने मस्तक झुकाने अथवा लज्जित होने की आवश्यकता नहीं।

लगभग तीन वर्ष तक स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर प्रत्यक्षतः ज्ञान प्राप्त किया। इस अवधि में अद्विकांशतः वे पैदल ही चले। उन्होंने देश की अवनति के कारणों पर मनन किया और उन साधनों पर विचार किया जिनसे कि देश का पुनः उत्थान हो सके। भारत की दरिद्रता के निवारण हेतु सहायता प्राप्ति के उद्देश्य से उन्होंने पाश्चात्य देशों की यात्रा का निर्णय लिया ।

सन् 1893 ई0 में शिकागो (अमेरिका) में सम्पूर्ण विश्व के धर्माचार्यांे का सम्मेलन होना निश्चित हुआ। स्वामी जी के हृदय में यह भाव जाग्रत हुआ कि वे भी इस सम्मेलन में जाएँ। खेतरी नरेश, जो कि उनके शिष्य थे, ने स्वामी जी की इस भावना की पूर्ति में सहयोग किया। खेतरी नरेश के प्रस्ताव पर उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द धारण किया और अनेक प्रचण्ड बाधाओं को पारकर इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। निश्चित समय पर धर्म सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ । विशाल भवन में हजारों नर-नारी श्रोता उपस्थित थे। सभी वक्ता अपना भाषण लिखकर लाए थे जबकि स्वामी जी ने ऐसी कोई तैयारी न की थी। धर्म सभा में स्वामी जी को सबसे अन्त में बोलने का अवसर दिया गया क्योंकि वहाँ न कोई उनका समर्थक था, न उन्हें कोई पहचानता था।

स्वामी जी ने ज्यों ही श्रोताओ को सम्बोधित किया ''अमेरिका वासी बहनों और भाइयों! त्यों ही सारा सभा भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं। पूर्व के सभी वक्ताओं ने सम्बोधन में कहा था 'अमेरिका वासी महिलाओं एवं पुरुषों। स्वामी जी के अपनत्व भरे सम्बोधन ने सभी श्रोताओं का हृदय जीत लिया। तालियाँ थमने

पर स्वामी जी ने व्याख्यान प्रारम्भ किया। अन्य सभी वक्ताओं ने जहाँ अपने-अपने धर्म और ईश्वर की श्रेष्ठता सिद्ध करने की कोशिश की, वह ीं स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मांे को एकाकार करते हुए घोषणा की ''लड़ो नहीं साथ चलो। खण्डन नहीं, मिलो। विग्रह नहीं, समन्वय और शांति के पथ पर बढ़ो।' इस भाषण से उनकी ख्याति सम्पूर्ण विश्व में फैल गयी। अमेरिका के अग्रणी पत्र दैनिक हेराल्ड ने लिखा ''शिकागो धर्म सभा में विवेकानन्द ही सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता हैं।'' प्रेस ऑफ अमेरिका ने लिखा ''उनकी वाणी में जादू है, उनके शब्द हृदय पर गम्भीरता से अंकित हो जाते हैं।''

स्वामी जी की विदेश यात्रा के कई उद्देश्य थे। एक तो वे भारतवासियों के इस अन्धविश्वास को तोड़ना चाहते थे कि समुद्र यात्रा पाप है, तथा विदेशियों के हाथ का अन्न-जल ग्रहण करने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। दूसरा यह कि भारत में अंग्रेजी प्रभाव वाले लोगों को वे यह भी दिखाना चाहते थे कि भारतवासी भले ही अपनी संस्कृति का आदर करें या न करें, पश्चिम के लोग जरूर उससे प्रभावित हो सकते हैं।

शिकागो सम्मेलन के बाद जनता के विशेष अनुरोध पर स्वामी जी तीन वर्ष अमेरिका और इंग्लैण्ड में रहे। इस अवधि में भाषणों, वक्तव्यों, लेखों, वाद-विवादों के द्वारा उन्होंने भारतीय विचारधारा को पूरे यूरोप में फैला दिया।

विदेश यात्रा में उन्हें सबसे मधुर मित्र के रूप में जे0जे0 गुडविन,सेवियर दम्पति और मार्गरेट नोब्ल मिले जिन्हांेने उनके कार्य एवं विचारों को सर्वत्र फैलाया। मार्गरेट नोब्ल ही 'भगिनी निवेदिता' कहलायी। भगिनी निवेदिता भारतीय तपस्वी समाज में प्रवेश करने वाली प्रथम पाश्चात्य महिला थीं। इन्होंने पश्चिम में विवेकानन्द की विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु जितना कार्य किया उतना किसी और ने नहीं किया। विदेश यात्रा के दौरान ही उनकी भेंट प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर से हुई। विवेकानन्द ने उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया। मैक्समूलर स्वामी जी के ज्ञान एवं व्यवहार से अभिभूत हो गये।

स्वामी जी ने यूरोप और अमेरिकावासियों को भोग के स्थान पर संयम और त्याग का महत्त्व समझाया, जबकि भारतीयों का ध्यान समाज की आर्थिक दुरावस्था की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने कहा - ''जो भूख से तड़प रहा हो उसके आगे दर्शन और धर्मग्रन्थ परोसना उसका मजाक उड़ाना है'' उन्होंने कहा -''भारत का कल्याण शक्ति साधना में है यहाँ के जन-जन में जो साहस और विवेक छिपा है उसे बाहर लाना है। मैं भारत में लोहे की माँसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ियाँ देखना चाहता हूँ।'' मानव मात्र के प्रति प्रेम और सहानुभूति उनका स्वभाव था। वे कहा करते - ''जब पड़ोसी भूखा मरता हो तब मन्दिर में भोग लगाना पुण्य नहीं पाप है। वास्तविक पूजा निर्द्धन और दरिद्र की पूजा है, रोगी और कमजोर की पूजा है।''

इंग्लैण्ड और अमेरिका में पर्याप्त प्रचार कार्य की व्यवस्था कर स्वामी जी भारत आये। यहाँ पहँुचकर अपने कार्य को दृढ़ आधार देने तथा मानव मात्र की सेवा के उद्देश्य से 1897 ई0

में 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। मिशन का लक्ष्य सर्वधर्म समभाव था।
नये मठों का निर्माण, देश-विदेश में प्रचार कार्य की व्यवस्था, इस सबके कारण स्वामी जी को विश्राम नहीं मिल पाता था। इसका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ने लगा। चिकित्सकों के सुझाव पर स्थान परिवर्तन कर दार्जिलिंग चले गये, पर तभी कोलकाता में प्लेग फैल गया। उन्हें यह समाचार मिला तो वे महामारी से ग्रस्त लोगों की सेवा के लिए विकल हो उठे। उन्होंने कोलकाता लौटकर प्लेग ग्रस्त लोगों की सेवा का कार्य शुरू कर दिया ।
स्वामी जी के हृदय में नारियों के प्रति असीम उदारता का भाव था। वे कहते थे - जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी, न आगे कर सकेगी।
4 जुलाई सन् 1902 ई0 को वे प्रातः काल से ही अत्यन्त प्रफुल्ल दिख रहे थे। ब्रह्म मुहूर्त में उठे। पूजा की। शिष्यों के बीच बैठकर रुचिपूर्वक भोजन किया। छात्रों को संस्कृत पढ़ाई । फिर एक शिष्य के साथ बेलूर मार्ग पर लगभग दो मील चले और भविष्य की योजना समझाई।
शाम हुई। संन्यासी बन्धुओं से स्नेहमय वार्तालाप किया। राष्ट्रों के अभ्युदय और पतन का प्रसंग उठाते हुए कहा ''यदि भारत समाज संघर्ष में पड़ा तो नष्ट हो जाएगा'' ।
सात बजे मठ में आरती के लिए घंटी बजी। वे अपने कमरे में चले गये और गंगा की ओर देखने लगे। जो शिष्य साथ था उसे बाहर भेजते हुए कहा - मेरे ध्यान में विघ्न नहीं होना चाहिए। पैंतालीस मिनट बाद शिष्य को बुलाया सब खिड़कियाँ खुलवा दीं। भूमि पर बायीं करवट चुपचाप लेटे रहे। ध्यान मग्न प्रतीत होते थे। घण्टे पहर बाद एक गहरा निःश्वास छोड़ा और फिर चिर मौन छा गया। एक गुरुभाई ने कहा - ''उनके नथुनों, मुँह और आँखों में थोड़ा रक्त आ गया है ।'' दिखता था कि वे समाधि में थे। इस समय उनकी अवस्था उन्तालीस वर्ष की थी।
अगले दिन संघर्ष, त्याग और तपस्या का प्रतीक वह महापुरुष संन्यासी गुरु भाई और शिष्यों के कंधांे पर जय-जयकार की ध्वनि के साथ चिता की ओर जा रहा था। वातावरण में जैसे ये शब्द अब भी गँूज रहे थे - ''शरीर तो एक दिन जाना ही है, फिर आलसियों की भाँति क्यों जिया जाए। जंग लगकर मरने की अपेक्षा कुछ करके मरना अच्छा है। उठो जागो और अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्म में लग जाओ।
परिभाषिक शब्दावली
अनन्त: जिसका अन्त न हो
निर्बाध: जिसमें कोई बाधा न हो
अध्यात्म: आत्मा परमात्मा संबंधी विचार
पिपासा: प्यास
प्रवर्तक: किसी विशेष कार्य में लगाने वाला

परिव्राजक: संन्यासी
अभिभूत: सम्मोहित
प्रफुल्ल: अत्यन्त प्रसन्नचित्त
महाप्रयाण: प्राणों का त्याग कर देना
आमूल: जड़ सहित/ पूर्णतः
संचारित: प्रवेश करा देना

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. नरेन्द्र के क्या शौक थे ?
2. नरेन्द्र के बारे में रामकृष्ण परमहंस ने क्या टिप्पणी की थी ?
3. स्वामी विवेकानन्द ने जीवन के क्या लक्ष्य निर्धारित किए ?
4. शिकागो धर्म सभा में स्वामी जी को सबसे बाद में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया क्योंकि-

(क) वे देर से पहँुचे थे।
(ख) वे पहले बोलने में झिझक रहे थे।
(ग) उन्होंने ही ऐसी इच्छा जताई थी।
(घ) वहाँ न तो कोई उन्हें पहचानता था, न समर्थक था।

5. शिकागो धर्म सम्मेलन में किस बात पर श्रोता देर तक तालियाँ बजाते रहे ?
6. स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं ने आपको सबसे ज्यादा प्रभावित किया और क्यों? संक्षेप में लिखिए।
7. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए -

Û विग्रह नहीं समन्वय और शान्ति के पथ पर बढ़ो।
Û मैं भारत में लोहे की माँसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ियाँ देखना चाहता हँू।
Û वास्तविक पूजा निर्धन और दरिद्र की पूजा है, रोगी और कमजोर की पूजा है।
Û जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी न आगे कर सकेगी।
Û भारत यदि समाज संघर्ष में पड़ा तो नष्ट हो जाएगा।
Û जंग लगकर मरने की अपेक्षा कुछ करके मरना अच्छा है। उठो, जागो और अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्म मंे लग जाओ।

खोजें: -

Û संसार के मानचित्र में अमेरिका।
Û भारत के मानचित्र में कोलकाता।

Û स्वामी जी के विषय में अपने बड़ों से पूछकर/ पुस्तकों से पढ़कर और अधिक जानकारी कीजिए और कक्षा में बताइए।
Û आपको अभी तक किसने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है ? उनके किन गुणों से आप प्रभावित हैं।